अन्नपूर्णा: कहानी शालिनी ताई की

वीणा

कुछ दिन पहले एक शिविर में उससे मुलाकात हुई। करीब पच्चीस बरस की पढ़ी-लिखी लड़की। अच्छा कमाती है। खूब हिम्मती है। सामने अच्छा भविष्य है। बातचीत के दौरान बोली—''मैंने बहुत ग़रीबी के दिन देखे हैं।'' यकीन नहीं हुआ। उसकी आपबीती सुनी। उसमें से उभरी एक और हिम्मती औरत की कहानी। उसकी मां। आज मैं उसी से आपका परिचय कराना चाहती हूं। इसका नाम जानने से कोई फ़ायदा नहीं। चलो, सहूलियत के लिए उसे शालिनी ताई कहते हैं। हां, मराठी है वह। आज पैंसठ साल की बूढ़ी है, परंतु अब भी अपने पैरों पर खड़ी है। आत्मविश्वास से भरी, खुद्दार औरत।

शालिनी ताई निम्न मध्य वर्ग में पैदा हुई। ऐसे ही घर में ब्याही गई। दो वक्त की रोटी आराम से मिल जाती थी। सिवाए घर के काम और घर के लोगों की सेवा करने के उसने कुछ नहीं जाना था। उसके पति की एक छोटी सी दुकान थी। किताब कापी, पैंसिल आदि की। गृहस्थी की गाड़ी चल रही थी।

शालिनी ने बहुत ऊंचे सपने कभी देखे ही नहीं थे। बाहर की दुनिया का उसे कुछ भी पता नहीं था। उसका संसार तो चौके में था।

शांत घरौंदा टूटा

वह खुश थी। पति अच्छा था। तीन बच्चे थे। दो बेटियां और एक बेटा।

एकाएक उसकी दुनिया में तूफान आया। उसके पति की दुकान में बहुत घाटा हुआ। लोगों का उधार नहीं चुका पाया। दुकान बेचनी पड़ी। वह बेकार हो गया। नौकरी की तलाश शुरू की। महीनों पर महीने बीतने लगे। कोई नौकरी नहीं मिली। घर का सामान बिकने लगा। आखिर पेट तो भरना था अपना भी और बच्चों का भी।

नौबत यह आ गई कि बेचने को भी कुछ न रहा। अपनी गरीबी को छुपा कर रखना भी मुश्किल हो गया। सफेद पोशी और इज्ज़त ने भीख भी नहीं मांगने दी। भूखे बच्चों का रोना सुना न जाता था। इन हालात ने शालिनी के पति की हिम्मत बिल्कुल तोड़ दी। वह तो बिस्तर पर लेट गया।

जब लगने लगा कि चार छः दिन से ज्यादा

का दाल चावल नहीं बचा तो उसके पति ने कहा—"शालू, अब मैं पूरी तरह हार गया हूं। मैं तुम सबको नहीं पाल सकता। चलो हम सब जान दे देते हैं। पहले बच्चों को नदी में धक्का दे देंगे, फिर खुद कूद पड़ेंगे।"

शालिनी को भी हालात मालूम थे परंतु उसने कहा—"एक सप्ताह और देख लेते हैं। फिर भी कुछ न हुआ तो हम सब आत्महत्या कर लेंगे।"

उसी दिन शाम को उनकी दुकान पर काम करने वाला एक आदमी मिलने आया। बातचीत के दौरान बोला कि इस शहर में खाने-पीने की बड़ी तंगी है। अकेले रहने वालों को कहीं भी घर का खाना नहीं मिलता। रोज़-रोज़ होटल में खाना मुश्किल है। शालिनी बोली, "भैया,अब आए हो तो जो कुछ रूखा-सूखा है, खाकर जाओ।"

शालिनी ने आखिरी बर्तन बेच कर थोड़ा-सा आटा, दाल, चावल खरीदा और मेहमान को भोजन परोसा। घर जाने से पहले वह कहने लगा—"भाभी, अगर तुम्हें एतराज न हो तो मैं सुबह शाम यहां खाना खा लिया करूं और तुम पैसे ले लो।"

नई शुरुआत

बस यहां से शुरुआत हुई एक व्यवसाय की। पहले दो चार बंधे ग्राहक लगे, फिर बढ़ते गए। दुकानों, दफ्तरों, कारखानों में काम करने वाले लोग जिन्हें वाजबी दामों पर घर का साफ-सुथरा खाना मिलने लगा।

शालिनी ने तो हमेशा खाना पकाया ही था। अब वो इन सबको भी अपना परिवार समझने लगी। यह सब इतना आसान नहीं था और न ही उसके संघर्ष के दिन इतनी जल्दी खत्म हो गए। लेकिन अब निराशा नहीं थी।

अभी बच्चे छोटे थे। पति खाट पर पड़ा रहता। था। शालिनी अकेली मंडी से राशन, सब्जी खरीदती। साफ़ करती। सुबह तीन बजे से उठ कर खाना पकाना शुरू करती। रात को बारह बजे भी कोई ग्राहक आ जाए तो भूखा वापिस न जाने देती। उठ कर दोबारा चूल्हा जलाती, रोटी सेंकती और खाना देती। उसने अपने कुछ उसूल बनाए थे कि पूरी ईमानदारी और मेहनत से काम करेगी। हर ग्राहक उसके परिवार का सदस्य था। जिसका दुख-सुख उसका अपना था। उसने कभी एक कटोरी खीर या मिठाई का एक टुकड़ा भी अपने बच्चों को अलग से नहीं दिया।

ज्यों-ज्यों बच्चे बड़े होने लगे उसे मदद करने लगे। लड़का उसके साथ राशन लेने जाता। सब मिल कर उसे छानते, बीनते। स्कूल जाने से पहले लड़कियां सौ-सौ रोटियां सेंक कर जातीं। वापिस लौट कर फिर खाना पकाने, बर्तन साफ़ करने में मां का हाथ बंटातीं। खूब मेहनत का जीवन था। पैसा भी बहुत ज्यादा नहीं था।

शालिनी कभी बेवाजिब मुनाफ़ा नहीं लेती थी। वह चाहती थी उसके परिवार को इज्ज़त और आत्मसम्मान के साथ पेट भर खाना मिलता रहे। बच्चे पढ़ते रहें। मां और बच्चे मिल कर साठ-साठ लोगों का दोनों समय का पूरा खाना बनाते। दाल, सब्जी, रोटी, चावल।

मेहनत रंग लाई

शालिनी की मेहनत और हिम्मत रंग लाई। बच्चे पढ़ लिख गए। उसने बड़ी बेटी का ब्याह कर दिया। फिर लड़का अच्छी नौकरी करने लगा। आज छोटी बेटी भी अच्छे पद पर है। पति आज

भी बिस्तर पर ही है। परन्तु शालिनी ने अकेले इस पूरे परिवार को डूबने से बचा लिया। सबसे बड़ी बात तो यह कि उसे यह पता ही नहीं कि उसने कोई बड़ा काम किया है।

आज जब उसके बच्चे कहते हैं कि मां तुम अब काम मत करो, उसका जवाब एक ही है— "अब काम ही मेरी ज़िंदगी है। मैंने हमेशा मेहनत का खाया है। अंत तक वही करना चाहती हूं।"

बेटी कहती है, "मैं मां की भावना समझ सकती हूं, इसलिए उसे काम से रोकती नहीं। बस, अब ग्राहक कम कर दिए हैं। इतने ज्यादा लोगों का खाना अकेले बनाना अब उसके बस की बात नहीं। अब भी जब अपने रोज़ के ग्राहकों को थाली परोस कर देती है, तो गरम रोटी खिलाती है। अपने चकले बेलन, बर्तनों के बीच संतुष्ट अन्नपूर्णा लगती है। जिसके कारण ही आज हम सब ज़िंदा हैं।"

□